THE TIMES OF INDIA

Date: 23-01-18

He's so unevolved

Can India afford an education minister who wants to put learning in unscientific chains?

TOI Editorials

Thanks to the spread of modern education since Charles Darwin published On the Origin of Species one and a half centuries ago, the scientific temper has also spread all across the globe. But by no means has it been a victory march all the way. For example, nearly half of Americans embrace the creationist view that God created humans just as they are today, sometime in the last 10,000 years. But in India where Hinduism is a much less codified belief system than Semitic religions, many different narratives of creation coexist. Here this anti-evolution folly hadn't yet assaulted the ease of doing science.

That peace has now been shattered by Union minister Satyapal Singh, who has demanded that Darwin's theory of evolution be banished from school and college curricula because it is "scientifically wrong". As proof, the good minister says our ancestors never reported seeing an ape turn into a man. If we adopt this line of thinking we might as well abandon the pursuit of science, and chain ourselves within the cognitive limits of what our ancestors told us. At this rate Singh will not only ignite young minds; he might spark explosions that turn them into mush.

It's ironic that Singh happens to be Union minister of state for human resources, in charge of our IITs and other institutions. Top scientists have expressed alarm at his prognostications. It's tempting to argue that his presence in the Union Cabinet points to a general deficiency of talent among NDA ministers. But at the very least it's fair to say that education is a low priority and receives stepmotherly treatment from NDA, as it has from previous governments. It's not surprising that our schools and universities are in such parlous condition, as attested to by the ASER report released last week no less than by poor global rankings of our universities.

दैनिक भास्कर

Date: 23-01-18

दावोस में कठिन प्रश्न उपस्थित करेगी कमाई की गैर-बराबरी

देश के अमीरों की आय में पिछले साल होने वाली बढ़ोतरी 20.9 लाख करोड़ रुपए है जो कि देश के सालाना बजट के बराबर है।

संपादकीय

विश्व आर्थिक मंच की सालाना दावोस बैठक से ठीक पहले आक्सफैम नामक अधिकारों की अंतरराष्ट्रीय संस्था ने अपने सर्वेक्षण में भारत में पिछले साल कमाई के दौरान उत्पन्न बेइंतहा गैर-बराबरी की चिंताजनक तस्वीर प्रस्तुत की है, जिसका प्रभाव वहां निवेश की बड़ी उम्मीद लेकर गए भारत के प्रधानमंत्री और उनके प्रभावशाली प्रतिनिधिमंडल पर पड़ सकता है।आक्सफैम का सर्वेक्षण बताता है कि 2017 में होने वाली कमाई का 73 प्रतिशत धन देश के सिर्फ एक प्रतिशत लोगों के हाथ में केंद्रित हुआ है और देश की आधी आबादी यानी 67 करोड़ लोगों की कमाई में महज एक प्रतिशत की वृद्धि हुई है। देश के अमीरों की आय में पिछले साल होने वाली बढ़ोतरी 20.9 लाख करोड़ रुपए है जो कि देश के सालाना बजट के बराबर है।

कमाई में होने वाली यह गैर-बराबरी इसलिए भी चौंकाती है, क्योंकि 2016 के मुकाबले इसमें बहुत अंतर आया है। उस साल देश के एक प्रतिशत लोगों के पास देश की कुल कमाई का 58 प्रतिशत हिस्सा गया था, जबकि वैश्विक अनुपात 50 प्रतिशत का था। दुनिया के दस देशों के 70,000 लोगों पर किए गए सर्वेक्षण में इस साल का वैश्विक अनुपात 82 प्रतिशत का है जो और भी चिंता बढ़ाने वाला है।बड़े लाव-लश्कर के साथ दावोस पहुंचे मोदी सरकार के लिए यह सर्वेक्षण कठिन प्रश्न खड़े करेगा, क्योंकि उस सम्मेलन में निवेश की उम्मीद होती है तो दुनिया में बढ़ती असमानता को मिटाने पर चर्चा भी होती है। भारत में बढ़ती असमानता के आंकड़ों पर तब से बहस छिड़ी हुई है जब से दुनिया के मशहूर अर्थशास्त्री और 'कैपिटल इन ट्वेंटी फर्स्ट सेंचुरी' जैसी पुस्तक लिखने वाले थामस पिकेटी ने इस ओर ध्यान खींचा है।

अब आक्सफैम की ओर से आए उसी तरह के आंकड़ों पर देश में बहस तेज होगी। सामाजिक स्तर पर देश के विभिन्न तबकों में कभी आरक्षण, तो कभी स्वाभिमान के नाम पर फूटते असंतोष और बढ़ती हिंसा लोगों की बेचैनी के प्रमाण हैं।मोदी सरकार के पास सिर्फ एक बजट पेश करने का अवसर है और इस असमानता को कम करने का कोई ठोस उपाय दिख नहीं रहा है। थामस पिकेटी और आक्सफैम ने असमानता की बढ़ती खाई को घटाने के लिए कॉर्पोरेट टैक्स बढ़ाने और कंपनियों के प्रमुखों के वेतन की सीमा तय करने का सुझाव दिया है। सवाल है कि क्या सरकार उस दिशा में कोई कदम उठा पाएगी?

नईदुनिया

Date: 23-01-18

अराजकता का प्रदर्शन

संपादकीय

'पद्मावती' से 'पद्मावत' में तब्दील हुई फिल्म का जिस हिंसक और अराजक तरीके से विरोध जारी है, उससे विरोध करने वाले संगठनों के साथ-साथ संबंधित राज्य सरकारों की भी बदनामी हो रही है। अब तो ऐसा लगता है कि संकीर्ण राजनीतिक कारणों से उन संगठनों को जानबूझकर हवा दी जा रही है, जो फिल्म के खिलाफ सड़कों पर उतरकर हुड़दंग मचा रहे हैं। आखिर क्या कारण है कि चुनाव वाले राज्यों में ही फिल्म का ज्यादा विरोध हो रहा है ? निःसंदेह सवाल यह भी है कि इन राज्यों की सरकारें उत्पात मचा रहे संगठनों के खिलाफ किसी तरह की कार्रवाई क्यों नहीं कर रहीं ? यह कितना उचित है कि कुछ स्वयंभू संगठनों के नेता घूम-घूम कर हिंसा फैलाने की धमकी देते रहें ? बेहतर होगा कि इस मामले में केंद्र सरकार भी अपनी सक्रियता दिखाए, क्योंकि भाजपा शासित राज्यों में ही ज्यादा अराजकता देखने को मिल रही है। केंद्र सरकार को राज्यों को आवश्यक निर्देश देने में देर नहीं करनी चाहिए क्योंकि फिल्म 'पद्मावत' का विरोध करने वाले संगठन कानून एवं व्यवस्था का खुला उपहास उड़ा रहे हैं। फिल्म के विरोध में नियम-कानूनों को धता बताते हुए तोड़फोड़ एवं आगजनी करने की खुली धमकी देना, एक किस्म की गुंडागर्दी ही है। सभ्य समाज में किसी को भी यह शोभा नहीं देता कि वह अपनी आहत भावनाओं का हवाला देकर सड़कों अथवा अन्य सार्वजनिक स्थलों पर आम लोगों को आतंकित करने का काम करे। फिल्म 'पद्मावत' के विरोध में अराजकता फैला रहे संगठन यदि यह सोच रहे हैं कि उनकी बेजा हरकतों से देश-दुनिया उन्हें सही मान लेगी या फिर उनके प्रति सहानुभूति से भर जाएगी, तो ऐसा बिल्कुल भी नहीं होने वाला। कुतर्क के साथ मनमानी करने वाले समूह-संगठन सदैव आलोचना और अपयथ के पात्र बनते हैं।

सेंसर बोर्ड से अनुमति मिलने और सुप्रीम कोर्ट की ओर से फिल्म के विरोध को आधारहीन ठहराए जाने के बाद इसका कोई औचित्य नहीं रह जाता कि करणी सेना अथवा ऐसे ही अन्य संगठन जोर-जबरदस्ती से फिल्म के प्रदर्शन को रोकने की कोशिश करें। आखिर जब 'पद्मावत' के निर्माता, निर्देशक समेत जिन लोगों ने इस फिल्म को देखा है, वे बार-बार कह रहे हैं कि फिल्म में ऐसा कुछ नहीं है, जिससे किसी को आपत्ति हो, तब यह रट लगाने का क्या मतलब कि हमें यह फिल्म स्वीकार नहीं ? सबसे हास्यास्पद और विचित्र यह है कि ऐसा कहने वाले वे हैं, जिन्होंने न तो फिल्म देखी है और न ही उसकी विषय वस्तु के बारे में जानते हैं। यह किसी कुतर्क से कम नहीं कि रानी पद्मावती का चित्रण नहीं किया जा सकता। आखिर जब पार्वती, दुर्गा, सीता आदि पर फिल्में या धारावाहिक बन सकते हैं, तो रानी पद्मावती पर फिल्म क्यों नहीं बन सकती? फिल्म का हिंसक विरोध भारतीय समाज की गलत छवि पेश करने के साथ ही फिल्मकारों और अन्य कलाकारों की कल्पनाशीलता की हद तय करने वाला काम है। आखिर कोई कल्पनाशीलता को बंधक बनाने का काम कैसे कर सकता है? ध्यान रहे कि जो समाज ऐसे काम करता है, वह अवनति की ओर तो जाता ही है, उपहास का पात्र भी बनता है।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 22-01-18

जाति नहीं बदलती

दलित से शादी करने पर महिला दलित नहीं होगी।

संपादकीय

विवाह के बाद जाति न बदले जाने का सर्वोच्च न्यायालय का फैसला युगांतकारी साबित होगा। सर्वोच्च न्यायालय ने केंद्रीय विद्यालय से बर्खास्त एक शिक्षिका की अपील पर फैसला देते हुए कहा है कि कोई सामान्य जति की महिला यदि दलित से शादी कर ले तो वह दलित नहीं होगी क्योंकि जाति जन्म से निर्धारित होता है। इसके आधार पर महिला की केंद्रीय विद्यालय में 21 वर्षो की सेवा समाप्त हो गई। दरअसल, मामला एक अग्रवाल लड़की का था, जिसने जाटव लड़के से शादी की और इसके आधार पर अनुसूचित जाति का प्रमाण पत्र प्राप्त कर लिया। उसकी शैक्षणिक योग्यता और उसके जाति प्रमाण पत्र के आधार पर उसे पंजाब के पठानकोट में केंद्रीय विद्यालय में नौकरी मिल गई।

नौकरी के 21 साल के बाद सुनीता के खिलाफ यह शिकायत दर्ज की गई कि वह अग्रवाल जाति की है।बुलंदशहर के सिटी मजिस्ट्रेट ने जांच के बाद लिखा कि जाति प्रमाण पत्र गलत है।उसका जाति प्रमाण पत्र निरस्त कर दिया गया।केंद्रीय विद्यालय ने उसे नौकरी से बर्खास्त कर दिया। उसने इसके खिलाफ पहले इलाहाबाद उच्च न्यायालय और वहां से सफलता न मिलने पर सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था।.जाहिर है, ऐसा प्रमाणपत्र पाने वाली वह अकेली महिला नहीं हो सकती है. आम धारणा यही रही है कि महिला जिस जाति के पुरुष से विवाह करती है उसी जाति की हो जाती है।न्यायालय ने इसे नकार दिया है तो शादी के बाद महिलाओं की बदली गई जातियां असंवैधानिक हो गई हैं। वास्तव में इससे एक दौर का अंत हो रहा है।

अब दूसरी जातियों में शादी करने वाली लड़कियां पहले से यह जानेंगी कि उनकी जाति वही रहेगी जिसमें उन्होंने पैदा लिया है। किंतु पहले से जिन्हें पति की जाति का प्रमाण पत्र मिल गया है और उसके आधार पर वो कहीं नौकरी कर रहीं हैं या अनुसूचित जाति के दूसरे लाभ उनने उठाए हैं तो उन्हें दोषी मान लेना भी उचित नहीं होगा।इसमें उनका कोई दोष नहीं था, क्योंकि समाज की पंरपरानुसार उन्हें पति की जाति का प्रमाण पत्र दे दिया गया। वास्तव में इस फैसले के सामने आने के बाद न जाने कहां-कहां लोग किसके बारे में शिकायत करेंगे और कितनों की लगी हुई नौकरियां जाएंगी।अच्छा होगा कि न्यायालय में इससे संबंधित पुनर्विचार याचिका दायर हो।अभी तक जो महिलाएं नौकरी कर रहीं हैं, उनके साथ रियायत बरतते हुए उन्हें बर्खास्तगी की जगह सेवानिवृत्ति दी जा सकती है।

Date: 22-01-18

अनदेखी पड़ी भारी

अवधेश कुमार

यह आजाद भारत के इतिहास का पहला अवसर है जब किसी विधान सभा के एक साथ 20 विधायकों की सदस्यता लाभ के दोहरे पद के कारण चली गई हो।हालांकि चुनाव आयोग ऐसा ही फैसला करेगा इसे लेकर पूरे प्रकरण की जानकारी रखने वाले किसी भी तटस्थ व्यक्ति को शायद ही कोई संदेह रहा हो। आम आदमी पार्टी आज जो भी तर्क दे, उसके नेताओं को अगर इसका आभास नहीं था तो फिर मानना चाहिए कि वो अपने द्वारा निर्मित किसी ख्वाब की दुनिया में रह रहे थे।जिस ढंग से दिल्ली उच्च न्यायालय ने 8 सितम्बर 2016 को 21 विधायकों के संसदीय सचिव की नियुक्ति को रद्द कर दिया था और जो टिप्पणियां की थीं उन्हीं से साफ हो रहा था कि इन विधायकों की सदस्यता कभी भी जा सकती है।न्यायालय ने अपने आदेश में कहा कि नियमों को ताक पर रख कर ये नियुक्तियां की गई थीं।किसी मुख्यमंत्री को संसदीय सचिव नियुक्त करने का आधिकार है और होना भी चाहिए लेकिन जो भी होगा वह संवैधानिक प्रावधानों के अनुरूप ही होगा।केजरीवाल ने यहां प्रावधानों की अनदेखी करके नियुक्ति की थी और आज उसी का परिणाम उनके विधायकों एवं स्वयं उन्हें ऐसा परिणाम भुगतना पड़ा है। यह तो संयोग कहिए कि उनको 70 सदस्यों की विधान सभा में 66 सीटें हासिल थी, जिसमें से 20 के चले जाने के बावजूद बहुमत कायम रहता है, अन्यथा सरकार भी जा सकती थी।संविधान का अनुच्छेद 102 (1) (ए) स्पष्ट करता है कि सांसद या विधायक ऐसा कोई दूसरा पद धारण नहीं कर सकता, जिसमें अलग से वेतन, भत्ता या अन्य कोई लाभ मिलते हों।

लाभ के पद की व्याख्या पर काफी बहस हो चुकी है।इसलिए इस मामले में बहुत ज्यादा किंतु-परंतु की गुंजाइश नहीं हैं. इसके अलावा संविधान के अनुच्छेद 191 (1)(ए) और जन प्रतिनिधित्व कानून की धारा 9 (ए) के अनुसार भी लाभ के पद में सांसदों-विधायकों को अन्य पद लेने का निषेध है।इन सब प्रावधानों का मूल स्वर एक ही है, आप यदि सांसद या विधायक हैं तो किसी दूसरे लाभ के पद पर नहीं रह सकते या यदि आप किसी लाभ के पद पर हैं तो सांसद या विधायक नहीं हो सकते।आम आदमी पार्टी तर्क दे रही है कि जिन विधायकों को संसदीय सचिव बनाया गया उनको न कोई बंगला मिला, न गाड़ी, न अन्य सुविधाएं। यानी जब उन्होंने कोई लाभ लिया ही नहीं तो फिर उनको दोहरे लाभ के पद के तहत सजा कैसे दी जा सकती है? पहली नजर में यह तर्क सही भी लगता है।तो फिर चुनाव आयोग ने यह फैसला क्यों किया? आयोग को पता है कि अगर बिना किसी ठोस आधार के फैसला करेगा तो वह राष्ट्रपति के यहां रुक जाएगा या फिर न्यायालय में निरस्त हो जाएगा।चुनाव आयोग ने इतना लंबा समय लिया है तो जाहिर है कि उसने इस पर पूरा विमर्श किया और फिर आस्त हो जाने के बाद ही सदस्यता रद्द करने की सिफारिश कर दी।ऐसे कई राज्य हैं, जहां संसदीय सचिव का पद लाभ के पद के दायरे के अंदर है तो कुछ राज्य ऐसे हैं जहां यह बाहर है. दिल्ली में इन्हें लाभ के पद के दायरे में रखा गया है। दिल्ली में 1997 में सिर्फ दो पद (महिला आयोग और खादी ग्रामोद्योग बोर्ड के अध्यक्ष) ही लाभ के पद से बाहर थे. 2006 में नौ पद इस श्रेणी में रखे गए।

पहली बार मुख्यमंत्री के संसदीय सचिव पद को भी शामिल किया गया था।इसके अनुसार भी दिल्ली में मुख्यमंत्री केवल एक संसदीय सचिव रख सकते हैं।साफ है कि केजरीवाल ने 21 विधायकों की नियुक्ति करते समय इस बात का ध्यान नहीं रखा।मई 2012 में पश्चिम बंगाल सरकार ने भी संसदीय सचिव की नियुक्ति को लेकर विधेयक पास किया था।

इसके बाद ममता बनर्जी ने 20 से ज्यादा विधायकों को संसदीय सचिव नियुक्त किया। बावजूद इसके कोलकता उच्च न्यायालय ने सरकार के विधेयक को असंवैधानिक ठहरा दिया। तो केजरीवाल ने इस उदाहरण का भी ध्यान नहीं रखा।इसे ठीक से समझने के लिए जरा पूरे प्रसंग को संक्षेप में रखना जरूरी है। 13 मार्च 2015 को केजरीवाल सरकार ने अपने 21 विधायकों को संसदीय सचिव नियुक्त किया था। इसके खिलाफ दिल्ली उच्च न्यायालय में राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा की ओर से वकील रविन्द्र कुमार ने याचिका दायर की थी।इन्होंने इस नियुक्ति की संवैधानिकता पर सवाल उठाया था।

इसके समानांतर दिल्ली के एक वकील प्रशांत पटेल ने 19 जून 2015 को राष्ट्रपति के पास याचिका दायर की थी। इसमें संसदीय सचिव को लाभ का पद का मामला बताया था और 21 विधायकों की सदस्यता रद्द करने की मांग की थी। जब विवाद बढ़ा तो दिल्ली सरकार 23 जून, 2015 को विधान सभा में लाभ का पद संशोधन विधेयक लाई। इस विधेयक का मकसद संसदीय सचिव के पद को लाभ के पद से छूट दिलाना था।विधेयक पास करा कर 24 जून 2015 को इसे उप राज्यपाल नजीब जंग के पास भेज दिया गया।उप राज्यपाल ने इसे राष्ट्रपति के पास भेज दिया। निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार राष्ट्रपति ने चुनाव आयोग से सलाह मांगी। चुनाव आयोग ने याचिका दायर करने वाले से जवाब मांगा। प्रशांत पटेल ने 100 पृष्ठ का जवाब दिया और बताया कि मेरे याचिका लगाए जाने के बाद असंवैधानिक तरीके से विधेयक लाया गया। चुनाव आयोग इस जवाब से संतुष्ट हुआ और उसके अनुसार राष्ट्रपति को सलाह दिया। राष्ट्रपति ने विधेयक वापस कर दिया। वैसे भी दिल्ली विधान सभा में कोई विधेयक पेश करने के पूर्व उप राज्यपाल से अनुमति का प्रावधान है। इस मामले में उप राज्यपाल से अनुमति भी नहीं ली गई थी। आप स्वयं विचार करिए, केजरीवाल सरकार अगर संसदीय सचिव के पद का लाभ का पद मानती ही नहीं थी तो फिर यह विधेयक लाने की आवश्यकता क्यों महसूस की गई?

तो इस मामले की यही स्वाभाविक परिणति है।आप विधायकों का पद जाना ही था।इसे विडम्बना ही कहेंगे एक ऐसी पार्टी, जो राजनीति में नये मापदंड स्थापित करने के लिए आई थी, उसका हश्र ऐसा हो गया कि विधायकों को अपने नेता के पक्ष में बनाए रखने के लिए थोक भाव में संसदीय सचिव बनाना पड़ा। केजरीवाल को यह उम्मीद नहीं थी कि उनके विधायक स्थायी रूप से उनके नेतृत्व के प्रति निष्ठावान रहेंगे, इसलिए उन्होंने यह कदम उठाया अन्यथा इसकी कोई आवश्यकता नहीं थी।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 22-01-18

कमजोर सुरक्षा तंत्र से लीक होती सूचनाओं का आधार

किरण जोनालगड्डा, सह-संस्थापक, इंटरनेट फ्रीडम फाउंडेशन

आधार डाटा में हुई सेंधमारी वास्तव में हुई, तो कितनी भयावह होगी, इसका आकलन मुश्किल है, इसलिए इसे फिलहाल नजरंदाज करना ही बेहतर होगा। अच्छा होगा कि हम अभी छोटी-छोटी परेशानियों की चर्चा करें, जिन्हें समझना भी आसान है। हालांकि द ट्रिब्यून में रचना खैरा के इस खुलासे के बाद कि महज 500 रुपये में आधार का पूरा डाटाबेस हासिल किया जा सकता है, आम लोगों में कुछ जागरूकता बढ़ी है। मगर इस मसले पर जो प्रतिक्रिया आई है, वह

अपेक्षित ही थी। पहले तो किसी तरह की सेंधमारी को सिरे से खारिज किया गया, फिर खैरा और द ट्रिब्यून के खिलाफ एफआईआर दर्ज कर दी गई।

बहरहाल, आधार अधिनियम की धारा 59 उन तमाम गतिविधियों को एक तरह से मान्यता दे देती है, जो बाकी कानूनी प्रावधानों में गैर-कानूनी हैं। अभी कई राज्य अपने स्टेट रेजिडेंट डाटा हब्स (एसआरडीएच) के लिए धर्म व जाति जैसी नितांत निजी सूचनाएं इकट्ठा करने को उत्सुक हैं। ये हब्स बायोमिट्रिक से तो जुड़े हैं, पर इसे राज्य का कानून संरक्षण नहीं देता। यूआईडीएआई तो आधार नामांकन में ऐसा पहले से ही करता रहा है। उधर, आंध्र प्रदेश सब कुछ आधार से जोड़ चुका है। यहां तक कि मामूली ट्रैफिक चूक भी इसमें दर्ज है। वहां पुलिस भी अपराधियों व गुमशुदा बच्चों की पहचान करने के लिए बायोमिट्रिक का इस्तेमाल कर सकती है। ऐसे में, चुनाव के दौरान मतदाता पहचान पत्र के साथ यदि निजी सूचनाएं शामिल हो गईं, तो वे वाकई काफी संवेदनशील हो जाएंगी।

इसमें दो राय नहीं है कि आधार का इको-सिस्टम काफी व्यापक है। इसका प्रसार नंदन नीलेकणि जैसे यूआईडीएआई के पूर्व सदस्य और आईस्प्रिट जैसे थिंक टैंक, खोसला लैब्स जैसी निजी कंपनियां, ओमिड्यार और आईडीइनसाइट जैसी रिसर्च संस्थाएं, एयरटेल, जियो और पेटीएम जैसी सर्विस कंपनियां, भारतीय राष्ट्रीय भुगतान निगम तक है। दुर्भाग्य से यूआईडीएआई इस इको-सिस्टम का एक कमजोर रखवाला साबित हुआ है, और जिस तरह सिस्टम लगातार कमजोर पड़ता जा रहा है, उस वजह से इसकी सूचनाओं में सेंध कोई भी लगा सकता है। हमारा लोकतंत्र भले सामाजिक चिंताओं को तवज्जो देता है, पर सेंधमारी को प्राधिकरण एक सामान्य हादसा मानता है और पीड़ितों की चिंता पर गौर नहीं करता।

साल 2014 में नंदन नीलेकणि ने खुद ही गलती से अपना आधार डिटेल जाहिर कर दिया था। ऐसा आधार कार्ड का फोटो पोस्ट करने के दौरान हुआ था। तब उन्होंने अपने आधार नंबर को तो ढक दिया था, पर क्यूआर कोड को छिपाना वह भूल गए। उसमें उनका फोन नंबर, जन्मतिथि और घर का पता दर्ज था। आज भी कई वेबसाइटों पर वह तस्वीर उपलब्ध है। अगर नीलेकणि जैसे प्रभावशाली शख्स इंटरनेट से अपनी गोपनीय सूचनाएं नहीं छिपा पाए हैं, तो एक सामान्य व्यक्ति इसमें कितना सफल हो पाएगा, यह समझा जा सकता है? वास्तव में, एक आधार नंबर से आप कई तरह की सूचनाएं हासिल कर सकते हैं। *99*99# डायल करके आप यह आसानी से जान सकते हैं कि आधारधारक की सब्सिडी किस बैंक में जमा हो रही है। इण्डेन की वेबसाइट से आधारधारक का नाम, उसकी गैस-उपभोक्ता आईडी और बैंकों में जमा होने वाली सब्सिडी पता कर सकते हैं। जाहिर है, इन तरकीबों से किसी का लेखा-जोखा पाया जा सकता है।

यूआईडीएआई के पास अपने इको-सिस्टम की सुरक्षा-व्यवस्था को परखने की भी क्षमता नहीं है। इस सिस्टम में 300 से अधिक लाइसेंसधारक एजेंसियां हैं, जिनकी पहुंच मुख्य डाटाबेस तक तो है ही, उनके पास सीमित अधिकारों के साथ लाइसेंस देने और दूसरे डाटा के साथ उसे जोड़ने का भी अधिकार है। नतीजतन, हर कुछ सप्ताह में एक नई सेंधमारी की घटना सामने आती है। 'कारण' ब्लॉग के दस्तावेज यह तो बताते हैं कि सुर्खियों में आई सेंधमारी की घटना कैसे हुई, पर ऐसी सेंधमारी से, जिनसे हम अंजान हैं, हमारी सूचनाएं किस तरह गलत हाथों द्वारा इस्तेमाल की जा रही हैं, यह कौन जानता है? हमारे सैनिकों की सूचनाएं भी आधार डाटाबेस में दर्ज हैं। जाहिर है, आधार राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरे में डाल सकता है। सरकार ऐसी सेंधमारी की आशंकाओं को रोकने की दिशा में सक्रियता दिखाए।

Date: 22-01-18

आशंकाओं के निराधार तर्क

नंदन नीलेकणि, चेयरमैन, इन्फोसिस

यह संभव नहीं कि चित और पट, दोनों आपकी ही हो। अर्थशास्त्री इसे 'समझौता' कहते हैं। आप हर वक्त दो विरोधी मतों के बीच संतुलन बिठाते हैं। मसलन, 18वीं सदी के अंत तक या तो आप चार पहियों वाली घोड़ागाड़ी की सवारी कर सकते थे, जो धीरे-धीरे, लेकिन आपको एक सुविधाजनक यात्रा कराती, या फिर घोड़े की पीठ की सवारी करते थे, जिसमें आप मंजिल तक तेज तो पहुंच जाते, पर वह सफर अकेले (और परेशानी में) कटता। 1912 तक यह तस्वीर बनी रही। शुक्रिया अदा कीजिए हेनरी फोर्ड का कि अब हम तेज गति से भी यात्रा कर सकते हैं और सुकूनदेह भी। यही वजह है कि समाज ने नई तकनीक को हमेशा हाथों-हाथ अपनाया है, क्योंकि वे समझौते की स्थिति को बदल देती हैं।आधार का इस्तेमाल जैसे-जैसे बढ़ा है, कुछ लोग विभिन्न सेवाओं से इसे 'जोड़ने' को लेकर अपनी चिंता जाहिर करते रहे हैं। उनका डर यह था कि आधार जैसे यूनीक पहचान को अलग-अलग डाटाबेस से जोड़ने से उपयोगकर्ता की निगरानी और उसके बारे में तमाम जानकारियां सार्वजनिक हो सकती हैं। जॉर्ज ऑरवेल के उपन्यास 1984 की तस्वीर और 'पेनॉप्टिकॉन' (1791 में जेरेमी बेन्थम द्वारा प्रस्तावित एक गोलाकार जेल, जिसके केंद्र में सिपाही का कक्ष हो और उसके चारों तरफ कैदियों का। यानी सब कुछ पारदर्शी हो) की कहानी याद दिलाई जाती रही। मगर ये सभी चिंताएं निराधार हैं, और दुष्प्रचार भी।

पल-भर के लिए एक अन्य पहचान, मोबाइल नंबर का उदाहरण लेते हैं। एक शहरी मोबाइल धारक, जिसके पास एयरटेल का नंबर है, आमतौर पर अपने मोबाइल नंबर को कैब की बुकिंग के लिए ओला से, खाने का ऑर्डर देने के लिए जोमैटो से और मैसेज के लिए वाट्सएप से 'लिंक' करता है। मगर क्या इससे एयरटेल को यह पता होता है कि वह शख्स कहां जा रहा है, क्या खा रहा है या किससे चैट कर रहा है? नहीं। ऐसा इसलिए, क्योंकि 'लिंक करना' यानी जोड़ना एकतरफा प्रक्रिया है। आधार के साथ भी ठीक ऐसा ही होता है। आधार जारी करने वाला भारतीय विशिष्ट पहचान प्राधिकरण (यूआईडीएआई) यह कतई नहीं जानता कि आपने अपने आधार को कहां लिंक किया है और क्यों?

फिर भी, मान लें कि किसी विरल मामले में यदि ओला, जोमैटो और वाट्सएप आपस में सांठ-गांठ कर लेते हैं और आपका डाटा साझा कर लेते हैं, तो वे डाटा को 'लिंक' आपके मोबाइल नंबर से ही कर सकेंगे। बेशक आज ऐसी तकनीक उपलब्ध है कि आप कैब को बुलाने, खाने का ऑर्डर देने और संदेश भेजने के लिए कई तरह के सिम कार्ड और मोबाइल फोन ले सकते हैं, पर यह अव्यावहारिक ही होगा। सवाल है कि इस 'समझौते' से कैसे पार पाया जाए? इसका जवाब 'टोकनाइजेशन' तकनीक है। यह दरअसल, संवेदनशील सूचनाओं को यूनीक पहचान-संकेतों में बदलने की प्रक्रिया है, जिसमें सुरक्षा से कोई समझौता किए बिना तमाम जानकारियां सहेज ली जाती हैं। हमारे लिए टोकनाइजेशन का अर्थ है, जोमैटा, ओला और वाट्सएप के लिए स्वत: अलग-अलग मोबाइल नंबर होना। इसके अलावा, यदि आप चाहें, तो खुद का एक आभासी मोबाइल नंबर भी तैयार कर सकते हैं। यूआईडीएआई ने 2010 में आधार के शुरुआती दिनों में ही टोकनाइजेशन की बात कही थी, पर तब इसे ऐसा विचार माना गया, जिसने समय-पूर्व जन्म ले लिया था। मगर अब इसका वक्त आ गया है। टोकनाइजेशन की घोषणा कर दी गई है, जिससे आधार की निजता और सुरक्षा बढ़ गई है।

पहला काम सीमित ई-केवाईसी का किया गया है। इस कारण अब आपके आधार नंबर से जुड़ी सूचना तब तक सार्वजनिक नहीं हो सकती, जब तक कि कानूनन ऐसा करना जरूरी न हो। दूसरी व्यवस्था आधार इस्तेमाल करने वाली हर संस्था को अनिवार्य रूप से एक टोकन यानी आईडी नंबर देने की बनाई गई है। यह आईडी दुनिया में किसी दूसरी संस्था या शख्स के पास नहीं होगी। इससे आपके आधार नंबर का खुलासा तो नहीं ही होगा, सस्थाएं भी सांठ-गांठ से आपके रिकॉर्ड को 'जोड़' नहीं सकेंगी। इसके लिए आधार नंबर रखने वाले शख्स को अपने तईं कुछ नहीं करना होगा। सब कुछ स्वत: कर दिया गया है।बावजूद इसके यदि आप यूआईडीएआई की इस टोकनाइजेशन प्रक्रिया से संतुष्ट नहीं होते, तो तीसरी व्यवस्था का इस्तेमाल कर सकते हैं। इसके तहत वैकल्पिक रूप से 16 अंकों की अपनी आभासी आईडी बनाई जा सकती है। यह एक तरह का आपका छद्म आधार नंबर होगा और आधार नंबर के विकल्प के रूप में हर जगह इस्तेमाल किया जा सकेगा। वर्चुअल आईडी पाने या इसे बदलने के लिए आपको लैपटॉप या कंप्यूटर की जरूरत नहीं होगी।समावेशन के ये फीचर कुछ हद तक आधार में शुरू से रहे हैं। यहां तक कि जिनके पास घर नहीं है, वे भी बिना किसी मान्य पते के आधार पा सकते हैं। बस, इसके लिए उन्हें किसी का परिचय देना होगा। इसी तरह, आधार प्रमाणित करने के तरीकों में चेहरे की पहचान को भी एक विकल्प के रूप में शामिल करने की घोषणा की गई है, जो समावेशन की दिशा में बढ़ाया गया एक और कदम है।

अच्छी बात है कि बहस-मुबाहसों में उपयोगकर्ताओं की निजता को लेकर चर्चाएं की जाती हैं, पर दुखद है कि उनसे पूरी तस्वीर साफ नहीं की जाती। आधार को बहस के केंद्र में रखकर दरअसल अन्य तमाम अहम मसलों से ध्यान हटाया गया है, जबकि वे भी भारतीयों की निजता के लिए नुकसानदेह हो सकते हैं। मसलन, इस लेख की शुरुआत में मोबाइल नंबर को जिन सेवाओं से लिंक करने की बात मैंने कही, उससे भी आपकी निजता का मसला उसी तरह जुड़ा है, जिस तरह टोकनाइजेशन से पहले आधार से जुड़ा था। हाल में न्यूयॉर्क टाइम्स में प्रकाशित एक लेख में अमेरिकी जांच एजेंसी एफबीआई के एक एजेंट के हवाले से बताया गया है कि सामाजिक सुरक्षा वाले नंबर से कहीं अधिक खतरनाक मोबाइल नंबर होते हैं, क्योंकि इससे दस गुना अधिक डाटाबेस जुड़ा होता है।आधार की संरचना लोचदार है और उसमें इनोवेशन की संभावना कायम है। यूआईडीएआई जनता की चिंताओं को समझता है, जिसके लिए हमें उसकी सराहना करनी चाहिए। यह समझने की जरूरत है कि त्वरित प्रमाणीकरण की सुविधा के साथ 1.3 अरब भारतीयों को एक यूनीक व सुरक्षित पहचान देना ऐसी कोशिश है, जो लगातार मजबूत बन रही है। नौ वर्षों में आधार को लेकर जो कुछ हुआ है, वह किसी क्रांति से कम है क्या?

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

Date: 22-01-18

Undue process

The disqualification of 20 AAP MLAs by the EC is disproportionate and disturbing

Editorial

The disqualification of 20 MLAs of Delhi from the Aam Aadmi Party (AAP) by the President of India on Sunday on a binding recommendation of the Election Commission (EC) raises disturbing questions. The

AAP, and some former election commissioners, have challenged the manner in which the disqualification has taken place and the alleged disregard of due process in the action. The issues they have flagged call for wider discussion.

The legislators who have been disqualified for holding an "office of profit" were appointed as legislative secretaries by the Delhi government in 2015. In 2016, the Delhi High Court set aside the appointments, and the AAP pleaded before the EC that the matter was now void. On June 23, 2017, however, the EC said because the MLAs held the post at the time of appointment, the case will continue. Since June last year, there has been no hearing of the matter. Many states, such as Rajasthan and Karnataka, allow legislators to be appointed as parliamentary secretaries. There is, however, a precedent to back the EC's decision: Jaya Bachchan was disqualified from the Rajya Sabha for her holding the post of the chairman of UP Film Development Council and the disqualification was upheld by the Supreme Court in 2006. But in the case of Sonia Gandhi, her chairmanship of the National Advisory Council was exempted by an amendment to the Parliament Prevention of Disqualification Act, 1956. The Delhi Assembly too tried to amend the Delhi Members of Legislative Assembly (Removal of Disqualification) Act in 2015 to expand the exemption to parliamentary secretaries. However, the amendment was not approved by the President — bills passed by the Delhi legislature do not have the force of "law" unless approved by the Lieutenant Governor and the Centre.

Whether or not the EC's decision is in accordance with the spirit of the law is a matter for the courts to decide. But beyond the immediate debate, there is a larger question at hand over two conflicting constitutional principles that have played out at regular intervals in Delhi's politics since 2015: The letter of the law and the role of the elected legislature. In most other states, an act by the legislature would have resolved the "office of profit" issue. Article 239AA, which deals with the distribution of powers between the Centre and the Delhi government, remans contentious, though the high court had ruled in the LG's favour. The disqualified MLAs were elected to office for a full term and the "office of profit" they held ceased to exist in 2016. In this context, the action of EC, an institution admired for its impartial conduct, appears far too disproportionate.

THE HINDU

Date: 22-01-18

Capacity building for primary health care

A pluralistic and integrated medical system remains a solution worth exploring

Aparna Manoharan and Rajiv Lochan are involved with the IKP Centre for Technologies in Public Health;Rajiv Lochan is MD and CEO ofThe Hindu Group

A contentious element of the National Medical Commission (NMC) Bill 2017 — an attempt to revamp the medical education system in India to ensure an adequate supply of quality medical professionals — has been Section 49, Subsection 4 that proposes a joint sitting of the Commission, the Central Council of Homoeopathy and the Central Council of Indian Medicine. This sitting, referred to in Subsection 1, may "decide on approving specific bridge course that may be introduced for the practitioners of Homoeopathy

and of Indian Systems of Medicine to enable them to prescribe such modern medicines at such level as may be prescribed."

Missing the reality

The debates around this issue have been ranging from writing-off the ability of Ayurveda, yoga and naturopathy, Unani, Siddha and homoeopathy (AYUSH) practitioners to cross-practise to highlighting current restrictions on allopathic practitioners from practising higher levels of caregiving. However, these debates miss the reality: which is a primary health system that is struggling with a below-par national physician-patient ratio (0.76 per 1,000 population, amongst the lowest in the world) due to a paucity of MBBS-trained primary-care physicians and the unwillingness of existing MBBS-trained physicians to serve remote/rural populations. Urban-rural disparities in physician availability in the face of an increasing burden of chronic diseases make health care in India both inequitable and expensive.Therefore, there is an urgent need for a trained cadre to provide accessible primary-care services that cover minor ailments, health promotion services, risk screening for early disease detection and appropriate referral linkages, and ensure that people receive care at a community level when they need it.

Issue of cross-prescription

The issue of AYUSH cross-prescription has been a part of public health and policy discourse for over a decade, with the National Health Policy (NHP) 2017 calling for multi-dimensional mainstreaming of AYUSH physicians. There were 7.7 lakh registered AYUSH practitioners in 2016, according to National Health Profile 2017 data. Their current academic training also includes a conventional biomedical syllabus covering anatomy, physiology, pathology and biochemistry. Efforts to gather evidence on the capacity of licensed and bridge-trained AYUSH physicians to function as primary-care physicians have been under way in diverse field settings, and the call for a structured, capacity-building mechanism is merely the next logical step.

The 4th Common Review Mission Report 2010 of the National Health Mission reports the utilisation of AYUSH physicians as medical officers in primary health centres (PHCs) in Assam, Chhattisgarh, Maharashtra, Madhya Pradesh and Uttarakhand as a human resource rationalisation strategy. In some cases, it was noted that while the supply of AYUSH physicians was high, a lack of appropriate training in allopathic drug dispensation was a deterrent to their utilisation in primary-care settings. Similarly, the 2013 Shailaja Chandra report on the status of Indian medicine and folk healing, commissioned by the Ministry of Health and Family Welfare, noted several instances in States where National Rural Health Mission-recruited AYUSH physicians were the sole care providers in PHCs and called for the appropriate skilling of this cadre to meet the demand for acute and emergency care at the primary level.

Our own experience at the IKP Centre for Technologies in Public Health shows that there is hope. Here, the focus has been on deploying a capacity-building strategy using AYUSH physicians upskilled through a bridge-training programme, and the use of evidence-based protocols, supported by technology, to deliver quality, standardised primary health care to rural populations. Protocols cover minor acute ailments such as fever, upper respiratory tract infections, gastrointestinal conditions (diarrhoea, acidity), urological conditions, as well as proactive risk-screening. The Maharashtra government has led the way in implementing bridge training for capacity-building of licensed homoeopathy practitioners to cross-prescribe.

As anchors

Capacity-building of licensed AYUSH practitioners through bridge training to meet India's primary care needs is only one of the multi-pronged efforts required to meet the objective of achieving universal health coverage set out in NHP 2017. Current capacity-building efforts include other non-MBBS personnel such as nurses, auxiliary nurse midwives and rural medical assistants, thereby creating a cadre of mid-level service providers as anchors for the provision of comprehensive primary-care services at the proposed health and wellness centres. Further, the existing practice of using AYUSH physicians as medical officers in guideline-based national health programmes, a location-specific availability of this cadre to ensure uninterrupted care provision in certain resource-limited settings, as well as their current academic training that has primed them for cross-disciplinary learning hold promise. These provide a sufficient basis to explore the proposal of bridging their training to "enable them to prescribe such modern medicines at such level as may be prescribed".

Ensuing discussions will be well served to focus on substantive aspects of this solution: design and scope of the programme, implementation, monitoring and audit mechanisms, technology support, and the legal and regulatory framework. In the long run, a pluralistic and integrated medical system for India remains a solution worth exploring for both effective primary-care delivery and prevention of chronic and infectious diseases.